वर्तमान भारत में आयुर्वेद चिकित्सा प्रणालीकी प्रमाणिकता एवं प्रासंगिकता

इंदुजा दुबे

शोध छात्र संस्कृत विभाग
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट, सतना (मध्य प्रदेश)

डॉ0 अतुल कुमार दुबे

असिस्टेंट प्रोफेसर,
विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
हर्ष विद्या मंदिर पी.जी. कॉलेज,
रायसी, हरिद्वार (उत्तराखंड)

शोध सारांश

आयुर्वेद विश्व की सबसे प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति है जो अनादि और शाश्वत है ऋग्वेद जो कि मनुष्य जाति के लिए उपलब्ध प्राचीनतम शास्त्र है आयुर्वेद की उत्पत्ति भी ऋग्वेद के कल से ही है ऋग्वेद के अलावा अथर्ववेद में भी आयुर्वेदिक विषयक उल्लेख हैं तथा आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना जाता है। भारतीय वांग्मय में वेद प्राचीनता और पवित्रता की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। ये भारतीय धर्म, साहित्य, दर्शन व संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैद्यवेदों में ही मानव जीवन के अंकुर विद्यमान है। यह एक ज्ञातव्य तथ्य है की आयुर्वेद ऋग्वेद का उपांग है परन्तु इसमें औषधि ,उपचार आदि का अधिक सटीक वर्णन प्राप्त न होने के कारण है आयुर्वेदाचार्यों ने इसको अथर्ववेद का उपांग स्वीकार किया है। वैदिक काल से लेकर वर्त्तमान समय तक इस भूपटल पर विद्यमान चिकित्सा प्रणालियों में आयुर्वेदीय–चिकित्सा प्रणाली अग्रगण्य है। 'आयुर्वेद' शब्द आयु और वेद दो पदों के मेल से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है आयु का ज्ञान अर्थात् 'आयुर्वेद' जीवन से सम्बन्धित परिपूर्ण ज्ञान है। आयुर्वेद को परिभाषित करते हुए महर्षि चरक ने कहा है कि –

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।[1]

अर्थात् हित आयु ,अहित आयु ,सुख आयु ,दुःख आयु तथा उस आयु के लिये जो हितकर (द्रव्य, गुण, कर्मादि) अथवा जो अहितकर (द्रव्य ,गुण ,कर्मादि), आयु का मान और उसके लक्षणों वर्णन का जिसमें होता है ,उसको आयुर्वेद कहते है।

मूल शब्द– आयुर्वेद, चिकित्सा, प्रमाण, प्रणाली, उपचार, निरोग, संहिता, दर्शन, योग।

उद्देश्य (Objecative)–

1. आयुर्वेद–चिकित्सा में प्रत्यक्ष प्रमाणिकता के महत्त्व एवं उपयोगिता का प्रतिपादन करना।
2. राष्ट्रीय उत्थान के लिए आयुर्वेद एवं संहिता प्रयुक्त चिकित्सकीय ज्ञान के क्षेत्र को व्यापक और उपयोगी बनाना।
3. आयुर्वेद के वर्तमान चिकित्सा प्रणाली को भारतीय संस्कृति एवं वेद–वेदांग के आधार पर प्रभावी एवं प्रासंगिक बनाना।

शोध विषय–

'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'मा' धातु से करण अर्थ में ल्युट् (अन) प्रत्यय लगाने पर 'प्रमाण' शब्द निष्पन्न होता है, जिसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– **'प्रमीयतेऽननेति प्रमाणम्'**[2]। प्रमाण शब्द का समान्य अर्थ है– साक्षी या सिद्ध हुआ। प्रमाणों के स्वरूप को दर्शनाचार्यों ने अपने–अपने दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है। वैशेषिक दर्शन के आचार्य कणाद प्रमाण का लक्षण प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि–

अज्ञातार्थ ज्ञापक प्रमाणमिति प्रमाणसामान्य लक्षणम्[3] अर्थात् अज्ञातार्थ का प्रकाशक ज्ञान प्रमाण कहलाता है। तर्क संग्रहकार के अनुसार– **प्रमाकरणं प्रमाणम्**[4] अर्थात् यथार्थ ज्ञान का साधन प्रमाण है। वैशेषिकसूत्र में **अदुष्ट विद्या**[5] को प्रमाण कहा गया है। अर्थात् निर्दोष ज्ञान विद्या है, कणाद ने प्रमाण का यह समान्य लक्षण निर्दिष्ट किया है। न्यायवार्तिकार ने प्रमाण को परिभाषित करते हुए कहा है–**अर्थोपलब्धिर्हेतुः प्रमाणम्**[6] अर्थात् यथार्थ–अर्थ उपलब्धि का कारण प्रमाण है। वात्स्यायन के अनुसार – **प्रमातायेनार्थ प्रमणोति तत्प्रमाणम्**[7] अर्थात् जिस साधन द्वारा प्रमाता अर्थ का ज्ञान प्राप्त करता है, उसे प्रमाण कहते है। अतः यथार्थ ज्ञान को प्रमा तथा इसे प्राप्त करने के साधन को प्रमाण कहा जाता है। उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि यथार्थ ज्ञान का जो साधन है, वह प्रमाण है। समस्त दर्शनाचार्यों ने पदार्थों के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान के लिए प्रमाण को आवश्यक तत्त्व के रूप में स्वीकृत किया है।

4. प्रमाणिकता की संख्या पर दृष्टिपात –

दर्शनाचार्यों ने पदार्थों के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान के लिए प्रमाण को आवश्यक तत्त्व के रूप में स्वीकृत किया है, परन्तु इन सभी में प्रमाणों की संख्या निर्धारण के परिप्रेक्ष्य में मतभेद दृ ष्टिगोचर होता है। जैसा **न्याय**[8] दर्शन के अनुसार– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द इन चार प्रमाणों को स्वाकारते हैं, वहीं सांख्य[9], योग[10] व जैन दर्शन[11] – प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द के रूप में तीन ही प्रमाणों का उल्लेख करते हैं। प्रभाकर मत के अनुयायी मीमांसक– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द एवं अर्थापत्ति[12] तथा कुमारिलभट्ट के अनुयायी मीमांसक– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति व अभाव इन छः प्रमाणों की बात करते हैं। जबकि चार्वाक दर्शन एकमात्र प्रत्यक्ष प्रमाण को मानता है, वहीं बौद्ध दर्शन, वैशेषिक दर्शन– प्रत्यक्ष और अनुमान[13] को स्वीकारते है।

इसी प्रकार आयुर्वेद के आचार्यों में भी अन्य दार्शनिको की भाँति प्रमाणों की संख्या निर्धारण में मत वैभिन्य दिखाई देता है। यथा– आचार्य चरक ने प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द, युक्ति[14] तथा आचार्य सुश्रुत– पञ्चेन्द्रिय और प्रश्न को प्रमाण मानते हैं।[15] अष्टांगहृदयम्[16] व भाव प्रकाश में– दर्शन, स्पर्शन तथा प्रश्न को प्रमाणों के रूप में मान्यता दी है।

प्रत्यक्ष प्रमाण– प्रत्यक्ष शब्द, प्रति और अक्ष दो पदों के योग से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है– आँखों के सामने, परन्तु न्याय दर्शन में अक्ष शब्द इन्द्रियों का द्योतक है, जैसा कि कहा भी गया है कि– **अक्षमक्षम् प्रतीत्योत्पद्यते इति प्रत्यक्षम्।**[17] अतः यहाँ अक्ष शब्द का अर्थ इन्द्रिय और वृत्ति का अर्थ सन्निकर्ष किया गया है, अर्थात् इन्द्रिय का उनके विषय के साथ सम्बन्ध होने पर उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है।

आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना जाता है। भारतीय वांग्मय में वेद प्राचीनता और पवित्रता की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। ये भारतीय धर्म, साहित्य, दर्शन व संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैद्यवेदों में ही मानव जीवन के अंकुर विद्यमान है। यह एक ज्ञातव्य तथ्य है की आयुर्वेद ऋग्वेद का उपांग है परन्तु इसमें औषधि ,उपचार आदि का अधिक सटीक वर्णन प्राप्त न होने के कारण है आयुर्वेदाचार्यों ने इसको अथर्ववेद का उपांग स्वीकार किया है।

प्रत्यक्ष की परिभाषा–

विभिन आचार्यो ने प्रत्यक्ष को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है।

प्रत्यक्षं तु खलु तथा यत्न स्वयमिन्द्रियैः मनसा चोपलभ्यते।[1]

अर्थात् प्रत्यक्ष उसको कहते है जोज्ञान स्वयम इन्द्रियों और मन से प्राप्त किया जाता है।

आत्मेन्दियमनोऽर्थानां सन्निकर्षात्प्रवर्तते।व्यक्ति तदात्वे या
बुद्धि प्रत्यक्षं सा निगद्यते।।

अर्थात् आत्मा, इन्द्रिय, मन तथा इन्द्रियों के विषय के सम्बन्ध के समय जो निश्चयात्मक ज्ञान उत्पन्न होता है, वही प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है। अथ प्रत्यक्ष–**प्रत्यक्ष नाम तदात्मनाचेन्द्रियैश्च स्वयमुपलभ्यते,**।[1] अर्थात् प्रत्यक्ष उस विषय को कहते है जो आत्मा तथा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा स्वयम् जाना जाता है। **इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्**[2] अर्थात् इन्द्रियों के सन्निकर्ष से उत्पन ज्ञान प्रत्यक्ष है। विभिन्न दर्शनाचार्यों ने प्रत्यक्ष ज्ञान को दो प्रकार का माना है– निर्विकल्पक व सविकल्पक। जब वस्तु के सभी गुण धर्म का ज्ञान न होकर, यह कोई वस्तु है, इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है तब वह निर्विकल्पक ज्ञान कहलाता है। जब वस्तु का नाम, गुण आदि का ज्ञान प्राप्त होता है, उसे सविकल्पक ज्ञान कहते हैं। यह सविकल्पक ज्ञान दो प्रकार का कहागया हैं– लौकिक व अलौकिक। लौकिक ज्ञान बाह्य (श्रवण, त्वचा, चक्षु, रहना, घ्राण) व अभ्यन्तर (मानस) भेद से दो प्रकार का होता है और अलौकिक ज्ञान सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण, योग भेद से तीन प्रकार का कहलाता है। इनमें योगज भी युक्त व युंजान भेद से दो प्रकार का होता है। परन्तु आयुर्वेदीय चिकित्सा के क्षेत्र में लौकिक ज्ञान के बाह्य भेद (श्रवणादि) का ही महत्त्व सर्वाधिक दृष्टिगोचर होता है।

इन्द्रियों का अवलोक– इन्द्रियाँ मानव शरीर की अत्यन्त उपयोगी अवयव हैं। सामान्यतः इन्द्रियों की संख्या ग्यारह स्वीकार की गयी हैं। इन समस्त इन्द्रियों को इनके कर्म अनुसार तीन प्रकार से विभाजित किया जाता है। 1– ज्ञानेन्द्रियाँ 2– कर्मेन्द्रियाँ 3– उभयेन्द्रिय। **ज्ञानेन्द्रिय**– इनकी संख्या पाँच हैं– श्रोत्र, त्वक, चक्षु, रसना, घ्राण। **कर्मेन्द्रिय**– ये भी संख्या में पाँच हैं– वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ, पायु। **उभयेन्द्रिय**– मन को उभयेन्द्रिय कहाँ गया है। ।

उपर्युक्त समस्त इन्द्रियों में प्रत्यक्ष ज्ञान का साधन ज्ञानेन्द्रियों को व मन को माना गया हैं। आयुर्वेद में ज्ञानेन्द्रियों के विषय, द्रव्यादि के ज्ञान हेतु पंच पंचक[18] सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। इस सिद्धांतके अन्तर्गत पंच इन्द्रियों, पंच इन्द्रिय द्रव्यों, पंच इन्द्रियों के अधिष्ठान, पंच इन्द्रियों के विषयों, पंच इन्द्रियों की बुद्धियों का विवेचन किया गया हैं–

पाँच इन्द्रिया– तत्र चक्षु श्रोत्रंघ्राणं स्पर्शनमिति पंचेन्द्रियाणि।

पाँच इन्द्रिय द्रव्य– पञ्चेन्द्रियाणि– खं वायज्योतिरापोभूरिति।

पाँच इन्द्रिय अधिष्ठान– पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानानि– अक्षिणीकर्णो नासिकेजिह्वात्वक्चेति।

पाँच इन्द्रिय विषय– पञ्चेन्द्रियार्थ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः।

पाँच इन्द्रिय बुद्धि चक्षुर्बुद्धयादिकाःताःरूपुनरिन्द्रियार्थसत्त्वात्म सन्निकर्षजाः क्षणिकाः निश्चयात्मिकाश्च।

इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष– इन्द्रियों का अपने–अपने विषयों से सम्बन्ध अर्थात् आत्मा का मन से, मन का इन्द्रियों से, पंचज्ञानेन्द्रियों का उनके शब्द, स्पर्शादि विषयों से ज्ञान हेतु जो सम्बन्ध स्थापित होता हैं वह सन्निकर्ष कहलाता है। क्योंकि यह ज्ञान इंद्रियों से प्राप्त है इसलिये यह सविकल्पक ज्ञानके बाह्य भेद से सम्बंधित है। न्यायाधिकरण दर्शनों में यह सन्निकर्ष छः प्रकार का कहाँ गया है–

(1) संयोग (2) संयुक्त समवाय (3) संयुक्त समवेत समवाय (4) समवाय (5) समवेतसमवाय (6) विशेषण– विशेष्यभाव।

संयोग– चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने अत्र तः सन्निकर्षः स संयोग सन्निकर्षः। चक्षु का घट से संयोग होना संयोग सन्निकर्ष है।

संयुक्त समवाय–घटरूपस्यप्रत्यक्षं येन भवति स संयुक्तसमवायसन्निकर्ष। द्रव्यों में रहने वाले गुणादि से इन्द्रियों का जो संयोग होता है वह संयुक्त समवाय कहलाता है।

संयुक्त समवेत समवाय–रूपत्त्वसामान्यप्रतयक्षेसंयुक्तसमवेतसमवायसन्निकर्ष। अर्थात् चक्षु से रूपत्त्वसामान्यप्रतयक्षे जाति के प्रत्यक्ष में संयुक्त समवेत समवाय सन्निकर्ष होता है।

समवाय सन्निकर्ष– श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवाय सन्निकषर्रू अर्थात् श्रोत्र से शब्द के प्रत्यक्ष में समवाय सन्निकर्ष होता है।

समवेत समवाय– शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायःसन्निकर्षः श्रोत्रसमवेत शब्दादयास्त्विन्द्रियप्रत्यक्षाः शब्दत्त्वस्य समवायात्। अर्थात् श्रोत्र के साथ शब्दत्त्व का साक्षात्कार होने पर समवेत समवाय सन्निकर्ष होता है क्योंकि श्रोत्र के साथ समवेत हुए शब्द में शब्दत्त्व समवाय सम्बन्ध से रहता है।
विशेषण–विशेष्यभाव– आभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः सन्निकर्षः घटाभाववत् भूतलमित्यत्र चक्षुसंयुक्ते भूलतेघटाभावस्य विशेषणत्वात्। अर्थात् आभाव के प्रत्यक्ष में विशेषण विशेष्यभाव सन्निकर्ष होता है। घटाभाववत् भूतलम्अर्थात् भूतल घटाभाव युक्त है ऐसा कहने पर चक्षु जिस आभावयुक्त भू से सन्निकर्ष होता है वह भू घटा भाव वाले विशेषण से संयुक्त है। चक्षु संयुक्त भूतल विशेष्य है व घटा भाव विशेषण है।

उपर्युक्त विवेचन से भिन्न आयुर्वेद दर्शन में चिकित्सा को ध्यान में रखते हुए दो प्रकार का सन्निकर्ष बताया गया हैं। आयुर्वेद में इसे इन्द्रियार्थ संयोग के नाम से प्रतिपदित किया गया है यह इन्द्रियार्थ संयोग निम्न प्रकार है – **सात्म्य और असात्म्य**– आयुर्वेद में सात्म्य व आसात्म्य दोनो शब्दों का ही विभिन्न स्थानों पर। प्रयोग हुआ है। सात्म्य का अर्थ है –हितकारी व आसात्म्य अहितकारी अर्थ में लिया गया हैं। हालांकि आयुर्वेद में आसात्म्य इन्द्रियार्थ संयोग का वर्णन ही दृष्टिगोचर होता है। संभवतः इसका कारण केवल अहित का ज्ञान करा उसके उपचार का वर्णन करना रहा होगा। आसात्म्येन्द्रियार्थ संयोग– इन्द्रिय भेद से यह पांच प्रकार का है तथा इसके त्रिविध विकल्प हैं।

1. अतियोग 2. अयोग 3. मिथ्यायोग।

चक्षुरिन्द्रियो के अतियोगादि– अधिक आभा वाले दृश्यों को देखना नेत्रों का अतियोग है। प्रकाश का सर्वथा अभाव अयोग है तथा अत्यन्त श्लिष्ट, अधिक सूक्ष्म, विकृत पदार्थों को देखना मिथ्या योग है अर्थात् ऐसी वस्तुओं को देखने से पहले हानि होती हैं।।
श्रवणेन्द्रिय अतियोगादि– बादलों की जोरदार गर्जन, उत्कृष्ट शब्दादि को सुनना श्रोत्र का अति योग है। बिल्कुल न सुनना अयोग है तथा कठोर शब्द, लेकिन प्रिय विनाशादि सुनना मिथ्या योग हैं।
घ्राणेन्द्रिय अतियोग आदि– अति तीव्र, उग्र गन्धों को अधिक सूंधना अतियोग है। गन्ध को जरा भी न सूँधना अयोग है कि तथा सडन युक्त गन्ध, विषाक्त वायु आदि को ढूँढना मिथ्या योग है।
रसनेन्द्रिय अतियोग आदि – प्रिय रसो का अत्यधिक सेवन अतियोग है। किसी भी प्रकार का कोई स्वाद न लेना अयोग है तथा चरक विमान स्थान प्रथमाध्याय उक्त प्रकृति आदि आठ आहार विधि में राशि को छोडकर अन्य रसो से बात जीभ का संयोग से मिथ्या योग है।
त्वगिन्द्रिय अतियोग आदि– अत्यंत शीतल–उष्ण पदार्थों का स्नान व उबटन आदि में अधिक सेवन करना अतियोग है। शीतल जल से स्नान, तैल मालिश आदि का सर्वथा अभाव अयोग है तथा चोट लगना, त्वचा को कष्ट देने वाले पदार्थों की का स्पर्श करना मिथ्या योग है।

प्रमाणिकता एवं प्रासंगिकता के परिपेक्ष में दृआयुर्वेद का शाब्दिक अर्थ जीवन का विज्ञान है आयुर्वेदीय–चिकित्सा में रोग, रोगी एवं रोग–चिकित्सा के निर्णय में प्रमाणों का आश्रय लिया जाता है। दार्शनिक दृष्टि से नहीं अपितु आतुर परीक्षा एवं रोग ज्ञान में भी प्रत्यक्ष की उपयोगिता एवं महत्व अन्य सभी प्रमाणों से अधिक है। परीक्षा के लिए मुख्य साधन इन्द्रियां हैं। इन्द्रियों के द्वारा परीक्षा का निर्देश शास्त्रों में स्पष्टतः मिलता है। यथा–

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षते च रोगिनम्।।[19]

अर्थात् (वैद्य) दर्शन, स्पर्शन और प्रश्न के द्वारा रोगी की परीक्षा करे। यहां तीन प्रकार की परीक्षा करने का निर्देश आचार्यों ने दिया है। ये तीनों परीक्षाएं प्रत्यक्ष के अन्तर्गत ही सन्निहित हैं। इसी प्रकार अन्य परीक्षाएं भी इन्द्रियों के द्वारा करने का निर्देश मिलता है, इस सम्बन्ध में चरक का निम्न वचन महत्वपूर्ण है।

"प्रत्यक्षतरतु खलु रोगतत्वं बुभुत्सुः सर्वैरिन्द्रियः सर्वानिन्द्रियार्थानातुरशरीरगतान् परीक्षेत, नान्यत्र[20] **रसज्ञानात्"**। अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा रोग ज्ञान करने की इच्छा करने वाला वैद्य रस ज्ञान को छोड़ कर शेष समस्त इन्द्रियों के द्वारा रोगी के शरीर में स्थित जानने योग्य समस्त विषयों की परीक्षा करे। आयुर्वेद के अनुसार मानव शरीर चार मूल तत्वों से निर्मित है दोष धातु मल और अग्नि इसका संतुलन जब तक बना रहता है तब तक मानव शरीर अपने आप को स्वस्थ महसूस करता है।

आयुर्वेदाचार्यो के अनुसार रोगी के ज्वर आदि की परीक्षा तथा हृदय के स्फुरण आदि का ज्ञान श्रोत्र इन्द्रिय के द्वारा, शरीर की आकृति, प्रमाण, वर्ण आदि की परीक्षा चक्षु के द्वारा, शरीर के ताप, नाड़ी स्फुरण आदि की परीक्षा स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा और गन्ध योग्य भावों की परीक्षा या ज्ञान घ्राणेन्द्रिय के द्वारा करना चाहिये। इन चारों इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त ज्ञान प्रत्यक्ष के अन्तर्गत आता है। प्रत्यक्ष के अभाव में शरीरगत किसी भी अवयव या भाव की परीक्षा होना सम्भव नहीं है। आयुर्वेद में अन्यत्र रोगी की अष्टविध परीक्षा का निर्देश दिया गया है। यथा–

रोगाक्रान्तशरीरस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्।
नाड़ी मूत्रं मलं जिह्वां शब्दं स्पर्श दृगाकृती।।[21]

अर्थात् मनुष्य के रोगाक्रान्त शरीर के निम्न आठ स्थानों (भावों) की परीक्षा करना चाहिये––१. नाड़ी, २. मूत्र, ३. मल, (पुरीष), ४. जिह्वा, ५. शब्द, ६. स्पर्श, ७. दृष्टि और ८. आकृति। इन समस्त भावों की परीक्षा इन्द्रियों के द्वारा ही सम्भव है। इन्द्रियों के द्वारा होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष के अन्तर्गत ही आता है। अतः आयुर्वेद में प्रत्यक्ष की उपयोगिता सुस्पष्ट है।

इसी प्रकार रोगी की चिकित्सा के लिए भी प्रत्यक्ष की उपयोगिता है। आयुर्वेद के अन्य विषयों जैसे अगद तन्त्र, कौमार भृत्य, प्रसूति तंत्र, रस–शास्त्रभैषज्य कल्पना, शल्य–शालाक्य तंत्र

आदि में भी प्रत्यक्ष के बिना काम चलने वाला नहीं है। अतः प्रत्यक्ष को अनिवार्य माना गया है। आयुर्वेदीय औषधि निर्माण शास्त्र की समस्त प्रक्रियाएं प्रत्यक्ष के अभाव में अपूर्ण ही रह जायेंगी।

निष्कर्ष– श्रेष्ठ भारत के उत्थान एवं आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली को बढ़ावा देने और स्वस्थ एवं कल्याणकारी निरोगित समाज विकसित करने के लिए उपरोक्त विश्लेषण उपरांत कहा जा सकता है कि उपयोगिता एवं प्रासंगिकता की दृष्टि से प्रत्यक्ष प्रमाणको आयुर्वेद में रोगी व रोग की परीक्षा के परिपेक्ष्य में अन्य प्रमाणों की अपेक्षा विस्तृत क्षेत्र प्राप्त है क्योकि अन्य प्रमाण किसी न किसी रूप में इसी पर आधारित हैद्यवर्तमान समय में भारत सरकार द्वारा आयुर्वेद के क्षेत्र में व्यापक सुधार अवसर के बढ़ावा दिए जा रहे हैं आयुर्वेद को बढ़ावा देने के लिए व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार के माध्यम से इसकी उपयोगिता को वैश्विक पटल पर लाने की नितांत आवश्यकता है जिससे आयुर्वेद को राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर बढ़ावा मिल सके।

<u>सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची</u> :–

1. चरकसंहिता, (सूत्र.स्था.१.४१)
2. चरकसंहिता, चक्र.टीका, (विमा. स्था. ८.७)
3. प्रमाण.समु.,टीका पृष्ठ ११
4. तर्कसंग्रह
5. वैशेषिकसूत्र (६.२.१२)
6. न्यायवृति
7. वात्स्यायन भाष्य
8. भारतीय दर्शन, पृष्ठ १७
9. दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्द्य
10. त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिःप्रमाणाद्धिः संख्यकारिका, ४
11. भारतीय दर्शन, पृष्ठ ३०
12. तर्कसंग्रह
13. चरकसंहिता, सूत्र.स्था. ८.३–१२
14. द्विविधमेव खलु सर्वम् सच्चासच्च,तस्य चतुर्विध परीक्षा आप्तोपदेशरू,प्रत्यक्षम ,अनुमानं, युक्तिश्च चरकसंहिता, (सूत्र.स्था. ११.१७)
15. षड्विधो हि रोगानां विज्ञानोपायरूद्य तद्यथा दृपंचभिरू श्रोत्रादिभिरूप्रश्नेन चेति सुश्रुतसंहिता, (सूत्र.स्था. १०.४)
16. दर्शनस्पर्शनप्रश्नैरू परीक्षते च रोगिनम् अष्टांग. (सूत्र.स्था. १.२२)
17. प्रशस्तपाद भाष्य
18. चरकसंहिता, विमा. स्था. ४.४
19. अष्टांग. (सूत्र.स्था. १.२२)
20. चरक संहिता, विमान स्थान ४७
21. योग रत्नाकर